ISSN: 2456–4397 RNI No.UPBIL/2016/68067 Vol-5* Issue-8* November-2020
Anthology : The Research

लोक जीवन में स्त्री चेतना के गीत

Songs Of Female Consciousness in Public Life

Paper Submission: 12/11/2020, Date of Acceptance: 25/11/2020, Date of Publication: 26/11/2020

अनामिका सिंह
शोध छात्रा,
हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग,
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ,
वाराणसी, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश

लोक का अर्थ व्यक्तिगत नहीं वरन सम्पूर्ण जनसमुदाय से है। लोक ही वह माध्यम है जिसने मनुष्य को उसकी मनुष्यता से जोड़े रखा है। अपने मूल स्वरूप में लोक का सौन्दर्य अनगढ़ है, सुसज्जित नहीं फिर भी उसका परिवेश बहुत सुकून देने वाला है। लोक की सबसे बड़ी ताकत यही होती है। कि उसमें कृत्रिमता नहीं होती है। डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय के अनुसार'' आधुनिक सभ्यता से दूर अपने प्राकृतिक परिवेश में निवास करने वाली तथा कथित अशिक्षित एवं असंस्कृत जनता को लोक कहते हैं जिनका आचार–विचार एवं जीवन परम्परायुक्त नियमों से नियंत्रित होता है।''

इससे स्पष्ट रूप से पता चलता है कि जो लोग संस्कृत तथा परिष्कृत लोगों के प्रभाव से बाहर रहते हुए अपनी पुरातन स्थिति में वर्तमान हैं उन्हें लोक की संज्ञा प्राप्त है। लोक जीवन का संम्पूर्ण चित्र लोकगीतों में परिलक्षित होता है। लोकगीत लोक जीवन की आवाज है, अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। इन गीतों को ज्यादातर स्त्रीयाँ ही गाती हैं। वैसे पुरूष लोकगीतों की भी कमी नहीं है। ये गीत हर अवसर पर गाये जाते हैं। इनगीतों में जीवन के प्रत्येक पक्ष का समावेश होता है। स्त्रीयाँ अपने मनोभावों को भी परिणाम भुगतने को व्यक्त करने के लिए भी इन गीतों को माध्यम बनाती है। प्रायः इन गीतों में सुखी जीवन की कामना मौजमस्ती देवी देवताओं की प्रशंसा उनका गुणगान, पुत्र प्राप्ति की इच्छा सुख–दुख आदि का वर्णन होता है। लेकिन एक पहलू है जो कि अछूता रह गया है, वह है ''स्त्री चेतना'' लोकगीतों में पुरुषों को ही श्रेष्ठ बताया है, पुत्र द्वारा ही पुरखों के तरने की बात कही गई है। पुत्र प्राप्ति से मिले सुख का वर्णन इस गीत में है –

छठी माई के दीहल ललनवाँ, अंगनवा डुगरे।
ललना अंगनवा डुगरे, माई के करनवा डुगरे।

Lok means not the individual but the whole community. Lok is the medium that has kept a man connected with his humanity. The beauty of the folk in its original form is uncouth, not equipped, yet its surroundings are very relaxing. This is the biggest strength of the people. That there is no artificiality in it. According to Dr. Krishnadev Upadhyay, "The people living in their natural surroundings and away from modern civilization are called the illiterate and uneducated people whose folk is governed by the rules of ethics and life."

This clearly shows that those who are present in their archaic condition while remaining outside the influence of Sanskrit and sophisticated people, are known as folk. The entire picture of folk life is reflected in folk songs. Folklore is the voice of folk life, a powerful medium of expression. Most of the women sing these songs. By the way, there is also no shortage of male folk songs. These songs are sung on every occasion. These songs include every aspect of life. Women also make these songs a medium to express their emotions to suffer the consequences. Often in these songs, the wish of a happy life is described by the praise of the deities, their praise, the desire to have a son, happiness, sorrow etc. But there is one aspect that has remained untouched, that is, in the "feminine consciousness" folklore, men have been said to be superior, the son has said that the ancestors have grown. This song describes the happiness received from the son's attainment -

Dihal Llanwan of Sixth Mai, Anganwa Dugare.
Lalna Anganwa Dugare, Karanwa Dugare of Mai.

मुख्य शब्द : लोक जीवन, स्त्री चेतना, लोक गीत, संस्कार, परम्परा, सांस्कृतिक चेतना, सांस्कृतिक धरोहर।

Folk Life, Female Consciousness, Folk Songs, Rituals, Traditions, Cultural Consciousness, Cultural Heritage.

प्रस्तावना

लोकजीवन में स्त्रियों का स्थान ऊँचा नहीं है। पुत्री के जन्म लेते ही पिता तीन बालिश्त धरती में दब जाता है। पुत्री पृथ्वी पर बोझ के समान मानी जाती है। उसके जन्म की तुलना अंधेरी रात से की जाती है। पुत्री के कारण पिता का सिर झुक जाता है, कमर टूट जाती है। पुत्री के जन्म से समान पिता कहता है कि तुम्हारे पैदाहोने से मुझे गाली सहनी पड़ेगी। सुसुराल में लड़की की हर बात के लिए गाली सुननी पड़ती है जो उसके पिता का नाम लेके दी जाती है।

पुत्री को जन्म देने वाली स्त्री को अपमानित किया जाता है। स्त्रियाँ स्वयं को दोष देती है कि मुझे पहले से पता होता कि बेटी का जन्म होने वाला है तो मैं मिर्च पीकर उसे मार देती और प्रसव वेदना से मुक्त हो जाती।

जाहु हम जनिती धियवा कोखी रे जनमिहें,
पिहितों में मरिच झराई रे।
मरिच के झाके–झुके धियवा मरिरे जाइति,
छुटि जाइत गहवा संताप रे।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध आलेख का उद्देश्य लोकगीतों में स्त्री चेतना के स्वर की पड़ताल करना है। पुराने गीतों और आज के लोकगीतों में समय के साथ हुए परिचर्तन की दशा और दिशा का मूल्यांकन करना ही इस आलेख का उद्देश्य है।

विषय विस्तार

20वीं शताब्दी के पूर्व के लोकगीतों में जहां स्त्री के जन्म को दुख की संवेदना मिलती थी। उसकी स्थिति परिवार की देखभाल करने वाली, पुरुष का आलम्बन खोजने वाली तथा किसी न किसी रूप में पुरूष पर निर्भर रहने वाली अबला नारी की थी। अब समय बदल रहा है, धीरे–धीरे ही सही बदलाव की बयार चल रही है। कम ही सही लेकिन ऐसे गीत सुनने को मिल रहे हैं जिसमें स्त्रियाँ अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं को पुरानी वर्जनाओं को तोड़ती नजर आ रही है। गाँवों में वह स्त्रियों को घर से बाहर जाने की अनुमति नहीं होती है, यहाँ तक की उन्हें दिन के उजाले में घर की छत पर भी नहीं जाने दिया जाता है। उन्हें मनमारकर घर की चादीवारी में ही रहना होता है। लेकिन अब स्त्रियाँ अपने इस बंधन को तोड़कर आज़ाद होना चाहती हैं जिसके लिए वो कोई भी परिणाम भुगतने को तैयार हैं। जो इस गीत में देखने को मिलता है –

का करिहें बालम बेचारा, पीपरतर मारब नजारा हो,
ढेर खीसियइहें त घर से निकलिहें,
नरहर में करब गुजारा, पीपरतर मारब नजारा हो।

इस गीत में स्त्रियों की छटपटाहट को व्यक्त किया गया है, साथ ही पर्दा प्रथा का विरोध भी देखने को मिलता है। किसी प्रकार के पति से विवाद की स्थिति में पिता की सम्पत्ति में अधिकार माँगने तथा मायके में गुजारा करने के विकल्प को बताया गया है। अपने पति को परमेश्वर मानने वाली स्त्री वैवाहिक संबंधों में दरार पड़ने के कारण माँ बाप के दरवाजे पर माथा रगड़ने के बजाय समस्या का समाधान करने का प्रयास कर रही है–

सबकी अंगनवा देवरू बंसिया बजवलऽ
हमरी अंगनवा ना, देवरू झगरा लगववलऽ
हमारी अंगनवा ना।
कटबो जे काँटवा, ना। हन्हइबो आपन अंगना,
छूट हो जइहें ना, देवरू तोहरो आवा–जहिया,
छूट हो जइहें ना।

दहेज प्रथा के कारण कितनी ही स्त्रियों को घरवालों का अत्याचार झेलना पड़ता है। यहाँ तक की उन्हें मार भी दिया जाता है। दहेज प्रथा का विरोध गीतों के माध्यम से किया गया है।

कौन बेदरदी दहेजवा चलावल, गरद हो गइले देसवा,
एहि रे दहेजवा के कारन, केतना बसल उजरि गइले घरवा।
जेकरा हि घरवा में चुहिया रेंगत बाटे
ओकर सुनीले मोलाई।
बीस हजार जब नगद में पाइब, तब करबो बेटा के सगाई
एहि रे दहेजवा के कारन केतना, धुमेलिबिटिया कुँआरी।

इसी प्रकार–

करजा में डूबल बाबू के इजतिया
कहाँ से दीहें टी0बी0 हे मोर सखिया।

स्त्रियों को परिवार में निर्णय लेने का भी अधिकार नहीं होता। उनका शरीर भी उनका अपना नहीं होता। ससुराल वालों की इच्छानुसार ही बच्चों का जन्म होता है। यह गीत उन सभी बातों का विरोध करता हुआ दिखता है–

एक से दुई होई बेटा, चाहें बिटिया,
तीसरे न आवे देब सुन ऽ ए सजनवा।
छोट परिवार रही सुख के अधार,
बंस के सुगंध फइली, जैसे अंगनवा।

गाँवों में भी अब साक्षरता का प्रतिशत बढ़ रहा है। वहाँ भी स्त्रियाँ आधुनिक सभ्यता से परिचित हो रही हैं। अशिक्षा के कारण अब उन्हें ठगा नहीं जा सकता–

चला ऽ ए, सजनी हमनी ने पढ़ेके,
खेतवा में दिनराती खुरूपिया चलाए के,
आके सिलेटवा पर पिलसिन घुमाए के,
दुनिया जमना के साथे बढ़ेके,

निष्कर्ष

रूसो ने कहा था कि यदि पुरूष के बनिस्पत कोई स्त्री कमजोर या गलत तर्क देती है तो इसका कारण उसकी मानसिक संरचना, नहीं, बल्कि उसका परिवेश है। परिवर्तन के इस दौर में जब स्त्री घर से लेकर बाहर तक कहीं भी सुरक्षित नहीं है, अपने अस्तिव, अस्मिता को बचाने के लिए चेत जाना होगा। गाढ़ी हुई स्त्री से दूरी बनानी होगी। स्त्री से पहले मनुष्य बनना होगा। गाँव के उस पिछड़े तबके से लेकर महानगरों की

चकाचौध तक, प्रत्येक स्थान पर स्त्री को स्वयं को स्थापित करना होगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *भोजपुरी लोकसाहित्य, कृष्णदेव उपाध्याय, द्वितीय संस्करण, 2008ई0 विश्वविद्यालय प्रकाशन*
2. *लोक साहित्य और संस्कृति, डॉ0 दिनेश्वर प्रसाद, 2016, जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद*
3. *लोक साहित्य की भूमिका, डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय, 2016, साहित्यभवन (प्रा0) लिमिटेड*
4. *भोजपुरी लोकसाहित्यः सांस्कृतिक अध्ययन, श्रीधर मिश्र, सन्, 1971, हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद।*
5. *सम्मेलन पत्रिका लोकसंस्कृति अंक. पृ० २५०.*
6. *भारतीय संस्कृति में लोक जीवन की अभिव्यक्ति, महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज, एम.ए., सम्मेलन पत्रिका, लोक संस्कृति अंक, पृष्ठ–२४. हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग. १९७३.*
7. *मिश्र, विद्यानिवास (2003). वाचिक कवितारूभोजपुरी. नई दिल्लीरू भारतीय ज्ञानपीठ. पैठछ 81–263–0954–7. पहुँचतिथी 15 अप्रैल 2016.*